पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में

2019 की सरकारी अपील (एकल पीठ) संख्या 18

थाना कांड संख्या- 31 वर्ष- 2014 थाना- आर्थिक अपराध, बिहार जिला- पटना से उत्पन्न

==

आर्थिक अपराध इकाई अपने पुलिस अधीक्षक, ईओयू, पटना, बिहार के माध्यम से

......अपीलार्थी/ओ

बनाम

अरुणा कुमारी, पति- अदित्य नारायण, निवासी- गाँव- बारा, थाना- गुरारू, जिला- गया।

......प्रतिवादी/ओ

==

उपस्थितिः

अपीलार्थी/ओं के लिए:	श्री विश्वनाथ प्रसाद सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता
	सुश्री सोनी श्रीवास्तव, अधिवक्ता
प्रतिवादी/गण के लिए:	श्री वाई वी गिरि, वरिष्ठ अधिवक्ता
	श्री प्रणव कुमार, अधिवक्ता
	सुश्री श्रीष्टि सिंह, अधिवक्ता

==

अधिनियम/धाराएं/नियमः

- *परिसीमा अधिनियम की धारा 5*
- *भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धाराएं 7/13(2), 13(1)(डी), 20*

संदर्भित मामलेः

- *मूल चंद्र बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2025) 1 एससीसी 625 में रिपोर्ट किया गया*
- *कमिश्नर, नगर परिषद, भीलवाड़ा बनाम श्रम न्यायालय एवं अन्य, (2009) 3 एससीसी 525 में रिपोर्ट किया गया*
- *नयनकुमार शिवप्पा वाघमारे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2015) 11 एससीसी 213 में रिपोर्ट किया गया*
- *विनोद कुमार बनाम पंजाब राज्य, (2015) 3 एससीसी 220 में रिपोर्ट किया गया*
- *हजारी लाल बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन), (1980) में रिपोर्ट किया गया 2 एससीसी 390*
- *रमा देवी बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, 2024 में रिपोर्ट किया गया (4) पीएलजेआर 240*
- *पी.एस. राज्य बनाम बिहार राज्य, (1996) 9 एससीसी 1 में रिपोर्ट किया गया*
- *आशू सुरेंद्रनाथ तिवारी बनाम सीबीआई एवं अन्य, (2020) 9 एससीसी 636 में रिपोर्ट किया गया*
- *फूला सिंह बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, रिपोर्ट (2014) 4 एससीसी 9*
- *राजा एवं अन्य। बनाम कर्नाटक राज्य, (2016) 10 एससीसी 506 में रिपोर्ट किया गया*
- *सुनील कुमार संभुदयाल गुप्ता (डॉ.) एवं अन्य। बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2010) 13 एससीसी 657*
- *पंजाब राज्य बनाम मदन मोहन लाल वर्मा, 2013 में रिपोर्ट किया गया (14) एससीसी 153*
- *कृष्ण चंद्र बनाम दिल्ली राज्य, 2016 में रिपोर्ट किया गया (3) एससीसी 108*

अपील *- आर्थिक अपराध इकाई मामले में आए निर्णय के विरुद्ध दायर की गई, जिसमें उत्तरदाता को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7/13(2) सहपठित धारा 13(1)(घ) के आरोपों से बरी कर दिया गया था।*

निर्णय *- मौजूदा साक्ष्य स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि अभियुक्त ने अवैध रूप से रिश्वत की मांग की और उसे प्राप्त किया। (पैरा 56)*

धारा 13(1)(घ) के तहत आरोप सिद्ध करने के लिए अभियोजन पक्ष को यह साबित करने की आवश्यकता नहीं है कि अभियुक्त ने रिश्वत की मांग की थी। (पैरा 58)

अभियोजन पक्ष यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य प्रस्तुत करने में सफल रहा कि रिश्वत का भुगतान किया गया था और अभियुक्त ने इसे रिश्वत के रूप में जानबूझकर स्वीकार किया था। अतः न्यायालय के द्वारा अभियुक्त को दोषमुक्त करने का आदेश त्रुटिपूर्ण है। (पैरा 60)

यह तर्क अप्रासंगिक है कि अभियुक्त को संदेह का लाभ इस आधार पर दिया जाए कि उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही को खारिज कर दिया गया था। (पैरा 62)

उत्तरदाता को दोषी ठहराया जाता है। (पैरा 65)

==

पटना उच्च न्यायालय का निर्णय आदेश

==

कोरम: माननीय न्यायमूर्ति श्री बिबेक चौधरी

लिखित निर्णय

दिनांक: 19-02-2025

वर्तमान अपील के गुण-दोष पर निर्णय देने से पूर्व, इस न्यायालय द्वारा अंतर्वर्ती आवेदन संख्या 1/2019, जो कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत विलंब माफी हेतु दायर किया गया है, पर निर्णय लेना अनिवार्य है।

2. यह उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि वर्तमान अपील अंतर्वर्ती आवेदन संख्या 1/2019 के साथ दायर की गई थी। जिसे इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने 23 जनवरी, 2020 को पारित आदेश द्वारा विलंब माफी के अनुरोध को अस्वीकार करते हुए, अंतर्वर्ती आवेदन संख्या 1/2019 तथा सरकारी अपील (एकल पीठ) संख्या 18/2019, दोनों को खारिज कर दिया।

3. उक्त 23 जनवरी, 2020 के आदेश के विरुद्ध, अपीलकर्ता ने विशेष अनुमति याचिका संख्या (क्रि) 5068-5069 / 2020 के तहत सर्वोच्च न्यायालय में अपील दायर किया।

4. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 19 जुलाई, 2024 को निम्नलिखित आदेश पारित किया:—

> *"अनुमति प्रदान की जाती है।*
>
> *पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के पश्चात, हमारा मत है कि उच्च न्यायालय को विलंब माफ कर देना चाहिए था। यह विषय गहन विचारण योग्य था। अतः, हम प्रश्नगत निर्णय को निरस्त करते हैं और उच्च न्यायालय को निर्देश देते हैं कि वह यह परीक्षण करे कि 25.02.2019 के प्रश्नगत निर्णय के विरुद्ध राज्य को अपील करने की अनुमति दी जाए या नहीं। इस प्रकार, सरकारी अपील (एकल पीठ) संख्या 18/2019 को उच्च न्यायालय के समक्ष पुनर्जीवित माना जाएगा।*
>
> *हमने जानबूझकर इस विषय पर कोई अतिरिक्त टिप्पणी करने से परहेज किया है, क्योंकि इस मामले की सुनवाई उच्च न्यायालय द्वारा की जानी है। सभी दलीलें और तर्कों को स्वतंत्र रखा गया हैं।*
>
> *पक्षकार 28.08.2024 को उच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित होंगे, जब अगली सुनवाई की तिथि निर्धारित की जाएगी।*
>
> *अपीलें स्वीकृत की जाती हैं एवं उपरोक्त शर्तों के अनुसार निष्पादित की जाती हैं।*
>
> *यदि कोई लंबित आवेदन शेष हो, तो वह भी निष्पादित की जाती हैं। "*

6. उपरोक्त उद्धृत आदेश के अवलोकन से प्रतीत होता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय का मत था कि उच्च न्यायालय को विलंब माफ कर देना चाहिए था और मामले पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता थी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय की उपरोक्त टिप्पणी, मेरे विचार से, वस्तुतः यह संकेत देती है कि अपील दायर करने में हुई 98 दिनों की देरी को माफ कर दिया जाना चाहिए था और अपील के गुण-दोष पर गहराई से विचार करते हुए इसकी सुनवाई होनी चाहिए थी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय की यह टिप्पणी परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत दायर आवेदन को स्वीकार करने के निर्देश के स्वरूप में है।

7. इस न्यायालय ने 23 जनवरी, 2020 के प्रश्नगत आदेश के अनुच्छेद संख्या 14 में निम्नलिखित निष्कर्ष प्रस्तुत किया था:

> *"14. अंतर्वर्ती आवेदन में प्रस्तुत दलीलों से न्यायालय यह पाता है कि विभाग के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अपील का ज्ञापन तथा परिसीमा याचिका दिनांक 06.05.2019 को ही विभाग को भेज दी गई थी। अतः, यह स्पष्ट है कि 06.05.2019 को ही जब इस मामले को अपील दायर करने योग्य माना गया और तैयार अपील ज्ञापन तथा परिसीमा याचिका विभाग को भेजी गई, इसके बावजूद यह अपील अंततः 07.08.2019 को दायर की गई। न्यायालय के विचार में, इस प्रकार की देरी को साधारण रूप से माफ नहीं किया जा सकता। इस विलंब के संबंध में कोई उचित स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया गया है। "*

8. हाल ही में, **मूल चंद्र बनाम भारत संघ एवं अन्य (2025) 1 एस.सी.सी 625** में प्रकाशित मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **कोम्मर, नगर परिषद, भीलवाड़ा बनाम**

श्रम न्यायालय एवं अन्य (2009) 3 एस.सी.सी 525 में प्रकाशित के पूर्व निर्णय का उल्लेख किया और यह निर्णय दिया कि विलंब माफी के आवेदन पर विचार करते समय यह विधिसिद्ध सिद्धांत है कि उच्च न्यायालय को मामले के गुण-दोष में नहीं जाना चाहिए, बल्कि केवल यह देखना चाहिए कि अपील दायर करने में हुई देरी को माफ करने के लिए अपीलकर्ता द्वारा पर्याप्त कारण प्रस्तुत किया गया है या नहीं। हमने स्वयं भी उच्च न्यायालय के समक्ष परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत दायर आवेदन की समीक्षा की है और हमारे मतानुसार 178 दिनों की देरी के लिए अपीलकर्ता द्वारा उचित स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया गया है। इस परिस्थिति में, हम उच्च न्यायालय के प्रश्नगत आदेश को निरस्त करते हैं। फलस्वरूप, उच्च न्यायालय के समक्ष दायर अपील को उसकी मूल स्थिति में पुनर्स्थापित किया जाता है। उच्च न्यायालय से अनुरोध किया जाता है कि पक्षकारों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के पश्चात, विधि के अनुसार तर्कसंगत आदेश पारित करते हुये अपील की योग्यता के आधार पर अपील पर निर्णय ले।

9. वर्तमान अपील के निचली अदालत के अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि दोषमुक्ति का प्रश्नगत फैसला 25 फरवरी, 2019 को पारित किया गया था। एवं प्रमाणित प्रति प्राप्त करने के लिए आवेदन 16 मार्च, 2019 को किया गया था। प्रमाणित प्रति 4 अप्रैल, 2019 को अपीलार्थी को प्रदान की गई थी। अपील एवं परिसीमा याचिका 6 मई, 2019 को विभाग को भेजी गई थी। विभागीय स्वीकृति प्राप्त करने के पश्चात, 7 अगस्त, 2019 को अपील तथा परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत याचिका दायर की गई। यह सत्य है कि अपील दायर करने में लगभग 3 महीने की देरी हुई, परंतु ऐसे कई निर्णयों की श्रृंखला हैं, विशेष रूप से जहां सरकारी विभाग कोई कानूनी कदम उठाने के लिए बाध्य होता है, आधिकारिक लालफीताशाही समयसीमा की अवधि के भीतर ऐसा कदम उठाने में देरी का कारण बनती है। आधिकारिक सुस्ती या अभावपूर्ण दृष्टिकोण के ऐसे मामलों में, जब तक फाइल को संसाधित करने के लिए उत्तरदायी विशिष्ट अधिकारी को न्यायालय स्पष्ट रूप से चिह्नित नहीं करता, तब

तक अनुसंधान एवं अभियोजन से जुड़े आधिकारिक विभाग को इस देरी के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। इस प्रकार के मामलों में, न्यायालय को उदार एवं न्याय उन्मुख दृष्टिकोण अपनाते हुए, विभिन्न सरकारी विभागों द्वारा विमुक्ति आदेश के विरुद्ध दायर अपीलों पर पुनर्विचार करना चाहिए।

10. ऐसी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय पाता है कि वर्तमान अपील में हुई देरी को माफ किया जाना आवश्यक है।

11. तदनुसार, अपील दायर करने में हुई 98 दिनों की देरी को माफ किया जाता है।

12. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के मद्देनज़र, सरकार को अपील दायर करने की अनुमति दी जाती है, और अपील को योग्यता (गुण-दोष) के आधार पर सुनवाई के लिए स्वीकार किया जाता है।

13. यह अपील दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 378(1) सहपठित धारा 378(3) के तहत दायर की गई है, जो विशेष न्यायाधीश, निगरानी, पटना द्वारा विशेष मामला संख्या 52/2014 में पारित दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध है। यह मामला आर्थिक अपराध इकाई कांड संख्या 31/2014 से संबंधित है, जिसमें प्रतिवादी को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7/13(2) सहपठित धारा 13(1)(घ) के आरोपों से दोषमुक्त किया गया था।

14. पद्मावती कुमारी ने 15 जुलाई, 2014 को आर्थिक अपराध इकाई के समक्ष एक लिखित शिकायत दर्ज कराई, जिसमें यह आरोप लगाया गया कि वह औरंगाबाद जिले के गोह प्रखंड के अंतर्गत हामिदनगर पंचायत में आंगनवाड़ी सेविका के रूप में कार्यरत थी। 7 जुलाई, 2014 को गोह के सीडीपीओ (बाल विकास परियोजना पदाधिकारी) ने सूचक द्वारा संचालित केंद्र का निरीक्षण किया। अगले दिन, सीडीपीओ के निजी ड्राईवर रूपेश ने अपने मोबाइल फोन से सूचक को कॉल किया और उसे सूचित किया कि सीडीपीओ अरुणा कुमारी ने ₹10,000/- की रिश्वत की मांग की। यह भी कहा गया कि सूचक अपने केंद्र का संचालन

सही तरीके से नहीं कर पा रही है, और यदि रिश्वत की राशि का भुगतान नहीं किया गया, तो उसे केंद्र के प्रबंधन में असफल होने के आधार पर सेवा से बर्खास्त कर दिया जाएगा।

15. शिकायत प्राप्त होने पर, आर्थिक अपराध इकाई (ई ओ यू) के अधिकारियों ने निरीक्षक राजेश नारायण वर्मा को शिकायत की सत्यता की अनुसंधान करने का जिम्मा सौंपा। अनुसंधान के उपरांत, संबंधित अधिकारी ने 17 जुलाई, 2014 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें बताया गया कि शिकायत प्रथम दृष्टया सत्य प्रतीत होती है और सूचक 18 जुलाई, 2014 को दोपहर 01:00 बजे प्रतिवादी को रिश्वत की राशि सौंपने वाली हैं। इसके बाद, आर्थिक अपराध इकाई के अधिकारियों ने एक जाल बिछाने वाले दल (ट्रैप टीम) का गठन किया और एक जाल में फंसाने की योजना तैयार की गयी। सूचक को ₹10,000/- की राशि देने के लिए कहा गया, जिसे प्रतिवादी को सौंपा जाना था। इस राशि को फिनोल्फ्थलीन पाउडर से लेपित किया गया। दोपहर लगभग 01:15 बजे, सूचक आरोपी के कक्ष में गई और ₹10,000/- की मुद्रा सौंप दी। आरोपी ने उक्त राशि स्वीकार कर इसे एक काले पर्स में रख लिया। तत्काल ही, ट्रैप टीम मौके पर पहुंची, आरोपी को पकड़ लिया और उसके पर्स से रिश्वत की राशि बरामद की। इसके बाद, उसके हाथों और पर्स को सोडियम कार्बोनेट के घोल में डुबोया गया, जिससे घोल गुलाबी रंग में परिवर्तित हो गया। इसके बाद, नियमों और प्रक्रिया के तहत पैसे, पर्स और सोडियम कार्बोनेट घोल को जब्त किया गया, और जाल में फंसने के पश्चात का ज्ञापन तैयार किया गया। इसके बाद, आरोपी को गिरफ्तार कर हिरासत में ले लिया गया। आर्थिक अपराध इकाई ने मामले का अनुसंधान शुरू किया और अनुसंधान पूर्ण होने पर आरोपी/ प्रतिवादी के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7/13(2) सहपठित धारा 13(1)(घ) के तहत आरोपपत्र दायर किया। मामला विशेष न्यायाधीश, निगरानी, पटना की अदालत में विचारण के लिए स्थानांतरित किया गया। विशेष न्यायाधीश ने अपराध का संज्ञान लिया, आरोपी के खिलाफ उल्लिखित दंडात्मक प्रावधानों के तहत आरोप का गठन किया, और मामले का विचारण प्रारंभ हुआ। विचारण के दौरान,

अभियोजन पक्ष ने कुल 12 गवाहों की गवाही दर्ज कराई। इसके अलावा, ट्रैप पूर्व संस्मरण ट्रैप पश्चात संस्मरण, फॉरेंसिक साक्ष्य और अन्य दस्तावेजों को साक्ष्य के रूप में प्रदर्श बनाया गया। मैं आगे अभियोजन द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों की विस्तृत चर्चा करूंगा।

16. विद्वान विचारण न्यायाधीश ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों तथा अभियोजन पक्ष एवं बचाव पक्ष के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत दलीलों पर विचार करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि अभियोजन पक्ष आरोपी के विरुद्ध आरोप सिद्ध करने में असफल रहा। इसी आधार पर, न्यायालय ने आरोपी को दोषमुक्त करार देते हुए निर्णय पारित किया।

17. इसलिए, यह अपील दायर की गई।

18. श्री विश्वनाथ प्रसाद सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिन्हें सुश्री सोनी श्रीवास्तव, विद्वान अधिवक्ता ने सक्षम रूप से सहयोग प्रदान किया, ने प्रारंभ में यह तर्क प्रस्तुत किया कि न्यायालय द्वारा आरोपी के पक्ष में निर्णय देने का मुख्य आधार यह था कि सूचक अपनी गवाही के दौरान पक्षद्रोही हो गया। उसने यह कहा कि उसने ₹10,000/- के बजाय केवल ₹7,000/- ही दिए। इसके अलावा, उसने यह भी कहा कि आरोपी ने व्यक्तिगत रूप से न तो उससे रिश्वत मांगी और न ही प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार की। विद्वान विचारण न्यायालय ने यह भी माना कि सूचक का कोई लंबित कार्य आरोपी के समक्ष नहीं था, अतः रिश्वत मांगने का कोई स्पष्ट उद्देश्य नहीं था। इसके अतिरिक्त, न्यायालय ने यह भी दर्ज किया कि जाल में फंसने के पूर्व का ज्ञापन और जाल में फंसने के पश्चात ज्ञापन में महत्वपूर्ण विसंगतियां पाई गईं। अभियोजन पक्ष जब्त किए गए रिश्वत के पैसे को प्रस्तुत करने में असफल रहा और यह तर्क दिया कि पुलिस मालखाना में चूहों और अन्य कृन्तकों द्वारा उसे नष्ट कर दिया गया। इसके अतिरिक्त आरोपी का काला पर्स भी पहचान के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया। कोई स्वतंत्र गवाह भी रिश्वत की मांग, स्वीकृति और बरामदगी की पुष्टि नहीं कर सका।

19. अपीलकर्ता की ओर वरिष्ठ से अधिवक्ता यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि शिकायतकर्ता को अभियोजन द्वारा पक्षद्रोही घोषित किया गया, जब उसने यह बयान दिया कि उसने आर्थिक अपराध इकाई के अधिकारी को केवल ₹7,000/- रुपये दिए जो राशि रिश्वत के रूप में देने के लिए दी गई थी, न कि ₹10,000/- रुपये।

20. इस संबंध में, अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि न्यायालय द्वारा यह अवलोकन कि सूचक की गवाही पर भरोसा नहीं किया जा सकता क्योंकि उसे पक्षद्रोही घोषित किया गया था, एक गलत धारणा है। यदि यह तर्क स्वीकार कर लिया जाए, तो ऐसा कोई मामला नहीं होगा जिसमें आरोपी के दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील स्वीकार की जा सके और विचारण न्यायालय द्वारा की गई त्रुटि को सुधारा जा सके।

21. अपने तर्क को प्रमाणित करने के लिए अपीलकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्षियों की गवाही की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं। उनका तर्क है कि किसी व्यक्ति को रिश्वत लेते हुए पकड़ने के लिए एक स्थापित अनुसंधान प्रक्रिया होती है। आर्थिक अपराध इकाई पहले "जाल में फँसने के पूर्व का एक संस्मरण" तैयार करती है। इसके आधार पर, सूचक को आरोपी के पास रिश्वत की रकम देने के लिए भेजा जाता है। जैसे ही आरोपी रिश्वत स्वीकार करता है, ट्रैप टीम उसे रंगे हाथ पकड़ लेती है।

22. अभियोजन पक्ष ने पर्याप्त सबूत पेश करके जाल में फँसने से पहले और बाद के संस्मरण, आरोपी के पर्स से रिश्वत के पैसे की बरामदगी और फोरेंसिक रिपोर्ट को साबित किया है, जो यह साबित करता है कि आरोपी ने उसके हाथ से पैसे स्वीकार किए थे और उसे काले रंग के पर्स के अंदर रखा था।

23. इस संबंध में, अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता **नयनकुमार शिवप्पा वाघमारे बनाम महाराष्ट्र राज्य** के मामले में दिए गए निर्णय, जिसे **(2015) 11**

एस.सी.सी 213 में रिपोर्ट किया गया था, के पैराग्राफ 18 को संदर्भित करते हैं, जिसमें, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यह मत व्यक्त किया गया है कि विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के साक्ष्य की मूल्यांकन करते समय भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 20 की उप-धारा 1 के तहत किए जाने वाले उपधरणा को पूरी तरह से अनदेखा कर दिया था।। धारा 20 की उप-धारा 1 में यह प्रावधान है कि जहां, धारा 7 या धारा 11 या धारा 13 की उप-धारा (1) के खंड (a) या खंड (b) के तहत दंडनीय किसी अपराध के विचारण में, यह सिद्ध हो जाता है कि आरोपी ने स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई परितोषण (विधिक पारिश्रमिक के अलावा) या कोई मूल्यवान वस्तु स्वीकार की है, प्राप्त की है, स्वीकार करने के लिए सहमत हुआ है, या प्राप्त करने का प्रयास किया है, तो यह उपधारणा की जाएगी कि उसने इसे किसी अनुचित उद्देश्य के लिए लिया है, जब तक कि इसका विपरीत सिद्ध न हो जाए, कि उसने उस परितोषण या उस मूल्यवान चीज़ को स्वीकार किया है या प्राप्त करने के लिए सहमत हुआ है या प्राप्त करने का प्रयास किया है, जैसा भी मामला हो। धारा 7 में उल्लिखित उद्देश्य या पुरस्कार के रूप में या, जैसा भी मामला हो, बिना किसी प्रतिफल के या उस प्रतिफल के लिए जिसे वह अपर्याप्त मानता है।

24. विद्वान विचारण न्यायालय उक्त अधिनियम की धारा 20 के तहत उपधरणा करने में विफल रहा केवल इस आधार पर कि सूचक ने बताया कि उसने जाल बिछाने वाले अधिकारियों को 7,000/- रुपये की राशि दी थी न की रुपए 10,000/- की।

25. अपीलार्थी की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा कि विद्वान विचारण न्यायाधीश ने शिकायतकर्ता के साक्ष्य पर भरोसा करने में त्रुटि की, जिसमें उसने कहा कि अभियुक्त ने कभी भी शिकायतकर्ता से कोई परितोषण की मांग नहीं की। शिकायतकर्ता द्वारा शपथ पर दिए गए इस बयान को एक मामूली विसंगति के रूप में माना जाना चाहिए था। यदि अभियोजन साक्षी 3 / राजेश नारायण वर्मा की गवाही को समग्र रूप से देखा जाए, जो सूचक द्वारा अपनी शिकायत में लगाए गए आरोपों की पुष्टि करने के लिए आरोपी के

कार्यालय गए थे। अभियोजन साक्षी 3 द्वारा बताया गया कि 17 जुलाई 2014 को वह सूचक के साथ लगभग दोपहर 01:30 बजे सीडीपीओ, गोह-1 ब्लॉक के कार्यालय गए। कार्यालय से यह जानकारी मिली कि सीडीपीओ अपने कार्यालय से दाउदनगर स्थित अपने आवास के लिए निकल चुकी हैं। वे लगभग 03:00 बजे दाउदनगर में आरोपी के घर पहुँचे। सूचक ने अभियोजन साक्षी 3 को अपना बहनोई बताकर परिचय कराया। अभियोजन साक्षी 3 की उपस्थिति में आरोपी ने शिकायतकर्ता से अवैध रूप से ₹10,000/- की अवैध परितोषण (रिश्वत) की मांग की। हालांकि, निचली अदालत ने आरोपी के पक्ष में निर्णय सुनाते समय अभियोजन साक्षी 3 की इस महत्वपूर्ण गवाही पर विचार नहीं किया।

26. **विनोद कुमार बनाम पंजाब राज्य (2015) 3 एस.सी.सी 220** में रिपोर्ट किए गए के निर्णय का उल्लेख करते हुए, अपीलार्थी के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह कहा गया है कि विद्वान विचारण न्यायाधीश ने कोई कारण नहीं बताया कि वह निगरानी दल (ट्रैप टीम) के साक्ष्य पर विचार करने में क्यों विफल रहे। वास्तव में, ट्रैप दल के गवाहों से जिरह के दौरान ऐसा कुछ भी नहीं पूछा गया, जिससे यह साबित हो सके कि वे किसी भी प्रकार से निजी रूप से अपीलकर्ता को दोषी ठहराने में रुचि रखते थे।

27. विनोद कुमार (उपर्युक्त) मामले में यह तर्क दिया गया कि जब एक बार सूचनाकर्ता अपने पूर्व बयान से पूरी तरह पलट जाता है, तो केवल ट्रैप गवाह के आधार पर दोषसिद्धि दर्ज नहीं की जा सकती।

28. **हजारी लाल बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन)**, जो **(1980) 2 एस.सी.सी 390** में प्रकाशित है, के मामले में एक पुलिस कांस्टेबल को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5(2) के तहत दोषी ठहराया गया था। आरोप यह था कि उसने सूचनाकर्ता (जो अभियोजन साक्षी 3 के रूप में पेश हुआ था) से ₹60/- की मांग की और स्वीकार किया। हालांकि, सूचक अपने पहले दिए गए बयान से मुकर गया और अभियोजन द्वारा उसे पक्षद्रोही

घोषित कर दिया गया। आधिकारिक गवाहों ने अभियोजन के पक्ष का समर्थन किया। आधिकारिक गवाहों की गवाही को ध्यान में रखते हुए, निचली अदालत ने अपीलकर्ता को दोषी ठहराया, जिसे उच्च न्यायालय द्वारा भी पुष्टि किया गया। इस मामले में एक तर्क दिया गया कि यदि पुलिस कांस्टेबल द्वारा रिश्वत मांगने या स्वीकार करने का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है, तो केवल चिन्हित मुद्रा नोटों की बरामदगी के आधार पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 4 के तहत कोई उपधरणा नहीं की जा सकती। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की :-

> *"10.............यह आवश्यक नहीं है कि धन के लेन-देन को प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा सिद्ध किया जाए। इसे परिस्थितिजन्य साक्ष्य द्वारा भी प्रमाणित किया जा सकता है। वर्तमान मामले में, त्वरित घटित घटनाओं की श्रृंखला केवल इस निष्कर्ष की ओर ले जाती है कि आरोपी ने अभियोजन साक्षी 3 से धन प्राप्त किया। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के तहत, न्यायालय किसी भी तथ्य के अस्तित्व की संभावना को मान सकता है, यदि वह प्राकृतिक घटनाओं की सामान्य प्रवृत्ति, मानवीय आचरण, तथा सार्वजनिक और निजी व्यवसायों के संदर्भ में उसे उचित प्रतीत होता है। धारा 114 के अंतर्गत एक उदाहरण यह है कि यदि कोई व्यक्ति चोरी के तुरंत बाद चोरी का सामान अपने कब्जे में रखता है, तो न्यायालय यह उपधरणा कर सकता है कि वह या तो स्वयं चोर है या फिर उसने चोरी की वस्तु यह जानते हुए प्राप्त की है कि वह चोरी की गई थी, जब तक कि वह अपने कब्जे का उचित स्पष्टीकरण नहीं देता। इसी प्रकार, वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय यह उपधरणा कर सकता है कि आरोपी, जिसने अपनी जेब से मुद्रा नोट निकाल कर और उन्हें दीवार के पार फेंक दिया, उसने ये नोट अभियोजन साक्षी 3 से प्राप्त किए थे, जो कुछ मिनट*

पहले तक इन नोटों के स्वामित्व में था। एक बार जब ये निष्कर्ष निकाला लिया जाता है कि आरोपी ने अभियोजन साक्षी-3 से पैसे प्राप्त किए, तो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम,1947 की धारा 4(1) के तहत उपधरणा तुरंत लागू हो जाती है। "

29. अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता आगे यह कहते हैं कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **रमा देवी बनाम बिहार राज्य एवं अन्य**, जो **2024 (4) पी.एल.जे.आर 240** में प्रकाशित है, अपने पूर्ववर्ती निर्णयों को संदर्भित करते हुए यह स्पष्ट किया कि *"फाल्सस इन ऊनो, फाल्सस इन ओमनीबस"* (जो एक बात में असत्य बोलता है, वह सर्वत्र असत्य ही माना जाता है) का सिद्धांत आपराधिक मामलों के विचारण में साक्ष्यों के मूल्यांकन के दौरान लागू नहीं होता। उपरोक्त सिद्धांत विधिक नियम का दर्जा नहीं रखता, बल्कि यह मात्र सावधानी का एक सिद्धांत है, जो इस बात से संबंधित है कि न्यायालय किसी विशेष परिस्थितियों में साक्ष्यों को कितनी गंभीरता से मूल्यांकन करेगा। यदि कोई गवाह अविश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत करता है, तो न्यायालय का कर्तव्य है कि वह शेष साक्ष्यों की सावधानीपूर्वक जांच करे और अनाज को भूसे से (सत्य को असत्य से) अलग करे। यदि अभियोजन पक्ष के मामले की मूल संरचना सुदृढ़ बनी रहती है, तो विश्वसनीय साक्ष्य को स्वीकार किया जा सकता है। न्यायालय को सत्य और असत्य को अलग करने में सतर्कता बरतनी चाहिए। केवल असाधारण परिस्थितियों में, जब सत्य और असत्य इस हद तक आपस में जुड़े हों कि उन्हें अलग कर पाना असंभव हो, तो संपूर्ण साक्ष्य को अस्वीकार किया जाना चाहिए।

30. वर्तमान मामले में, *वास्तविक* शिकायतकर्ता ने अभियोजन साक्षी 5 के रूप में गवाही दी। अपनी गवाही में, उन्होंने कहा कि *7* जुलाई, 2014 को वह गोह हेल्थ सेंटर में टीकाकरण का प्रशिक्षण ले रही थीं। उसी दिन, सीडीपीओ ने अंगनवाड़ी केंद्र का दौरा किया, जिसे *वास्तविक* शिकायतकर्ता संचालित कर रही थीं। शाम को, सीडीपीओ के ड्राईवर का फोन

आया, जिसमें उसने सूचक को बताया कि सीडीपीओ ने अगले दिन उसे बुलाया है। इसके बाद, वह सीडीपीओ के कार्यालय गईं और उनसे मुलाकात की। सीडीपीओ ने उन्हें बताया कि वह अपने अंगनवाड़ी केंद्र का संचालन सही तरीके से नहीं कर रही हैं और उनका केंद्र रद्द किया जा सकता है। जब सूचक ने सीडीपीओ से अनुरोध किया कि वह इतना कठोर कदम न उठाएं, क्योंकि 7 जुलाई, 2014 को वह ब्लॉक हेल्थ सेंटर में प्रशिक्षण ले रही थीं, तो सीडीपीओ ने उसे अपने ड्राईवर से मिलने के लिए कहा। इसके बाद, सीडीपीओ के चालक ने ₹10,000/- की मांग की। इसके बाद, सूचक ने आर्थिक अपराध इकाई में एक शिकायत दर्ज कराई, जिसे प्रदर्श-4 के रूप में चिह्नित किया गया। इसके बाद, राजेश कुमार ने उन्हें सीडीपीओ के कार्यालय ले जाकर उनकी शिकायत में किए गए बयान की पुष्टि कराई। जब वे सीडीपीओ से मिले, तो उसने फिर से ₹10,000/- की मांग की। इसके बाद, सूचक को ₹10,000/- की राशि आर्थिक अपराध इकाई के कार्यालय में लाने के लिए कहा गया। वह ₹7,000/- लाईं और इसे आर्थिक अपराध इकाई के अधिकारी को सौंप दिया। इसके बाद, वह 17 जुलाई, 2014 को फिर से आर्थिक अपराध इकाई के कार्यालय गईं और अगले दिन भी उनके हस्ताक्षर कुछ कागज़ों पर लिए गए। इसके बाद, उन्हें सीडीपीओ के कार्यालय ले जाया गया, जहां वह राजेश कुमार के साथ अंदर गईं और सीडीपीओ से मिलीं। सीडीपीओ ने उनसे पैसे देने के लिए कहा, तो उन्होंने उसे पैसे सौंप दिए और कमरे से बाहर आ गईं। तत्काल बाद, आर्थिक अपराध इकाई के अधिकारियों ने सीडीपीओ को पकड़ लिया।

31. अभियोजन साक्षी 5 की गवाही का संदर्भ देते हुए, *वास्तविक* अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता कहते हैं कि शिकायतकर्ता ने अभियोजन साक्षी 5 के रूप में गवाही देते हुए अभियोजन पक्ष के मामले की सभी महत्वपूर्ण बिंदुओं पर पुष्टि की। घटना वर्ष 2014 में हुई थी, जबकि सूचक ने दो साल बाद गवाही दी। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि सूचक ने ₹7,000/- दिए या ₹10,000/-, बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि क्या अभियोजन यह साबित करने में सफल हुआ कि सीडीपीओ ने सूचक से अवैध रिश्वत की मांग की थी, और

क्या वह रिश्वत वास्तव में सूचक द्वारा दी गई थी, तथा क्या आरोपी को आर्थिक अपराध इकाई के अधिकारियों ने रिश्वत की रकम के साथ तुरंत गिरफ्तार किया था।

32. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि ट्रैप गवाहों तथा सत्यापनकर्ता की गवाही पूरी तरह विश्वसनीय है और उन्होंने अभियोजन के मामले की पुष्टि इस प्रकार की कि जिससे न्यायालय को संतुष्ट किया जा सके। यह तथ्य कि ट्रैप गवाह पुलिस अधिकारी हैं, स्वतंत्र गवाह द्वारा पुष्टि की अनिवार्यता के लिए पर्याप्त आधार नहीं हो सकता, और केवल इस आधार पर उनकी गवाही को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इसके अलावा, ऐसा कोई सतर्कता सिद्धांत नहीं है, जो विधिक नियम के रूप में स्थापित हो गया हो, और न ही ऐसा कोई सिद्धांत है, जो यह अनिवार्य करे कि इन अधिकारियों की गवाही को सह-अपराधी की गवाही के समान समझा जाए तथा उसकी पुष्टि की आवश्यक हो। विशेष परिस्थितियों और तथ्यों के आधार पर, न्यायालय किसी विशेष मामले में ऐसे अधिकारी की गवाही पर बिना पुष्टि के कार्य करने से हिचक सकता है, लेकिन किसी अन्य मामले में, न्यायालय बिना किसी संकोच के ऐसे अधिकारी की गवाही स्वीकार कर सकता है। यह पूरी तरह से साक्ष्य के मूल्यांकन का विषय है, और इस संदर्भ में कोई कठोर और निश्चित नियम नहीं हो सकता, न ही कोई विशिष्ट प्रक्रियात्मक दिशा-निर्देश आवश्यक है। अपने तर्क के समर्थन में, अपीलकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता ने हजारी लाल (उपरोक्त) मामले के निर्णय को संदर्भित किया।

33. दूसरी ओर, श्री वाई. वी. गिरि, माननीय वरिष्ठ अधिवक्ता, प्रतिवादी की ओर से, तर्क देते हैं कि अभियोजन पक्ष सूचना देने वाले से अवैध परितोषण की मांग के आरोप के पीछे कोई उद्देश्य स्थापित करने में विफल रहा। कोई साक्ष्य अभिलेख पर नहीं था जिससे यह साबित हो सके कि सूचक का कोई लंबित कार्य आरोपी के समक्ष था और आरोपी का सूचक पर प्रशासनिक नियंत्रण था। अभियोजन पक्ष यह साबित करने के लिए भी कोई साक्ष्य प्रस्तुत करने में विफल रहा कि आरोपी, सीडीपीओ के पद पर रहते हुए, याचिकाकर्ता को

आंगनवाड़ी सेविका के रूप में पदच्युत करने का अधिकार रखता था या कि वह उस केंद्र को बंद कर सकती थी, जिसका सूचक प्रभारी थी। अतः अभियोजन पक्ष के मामले का मुख्य आधार, कि आरोपी ने सूचक के केंद्र को रद्द करने की धमकी देकर रिश्वत मांगी, मुकदमे की सुनवाई के दौरान साबित नहीं हो सका।

34. दूसरा, प्रतिवादी की ओर से माननीय वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि शिकायतकर्ता, जो अभियोजन साक्षी 5 के रूप में साक्ष्य दे रही थी, पक्षद्रोही हो गई और उसने स्वीकार किया कि उसने ₹10,000/- के बजाय केवल ₹7,000/- ही दिए थे और उसने कभी आरोपी को सीधे पैसे मांगते या स्वीकार करते नहीं देखा। अभियोजन पक्ष का मामला यह था कि प्रतिवादी के ड्राईवर ने प्रतिवादी के नाम पर सूचक से ₹10,000/- की मांग की थी। अनुसंधान संस्था ने अनुसंधान के दौरान प्रतिवादी के उक्त ड्राईवर से पूछताछ करने का कोई प्रयास नहीं किया। न ही उसके बयान को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के तहत दर्ज करने का कोई प्रयास किया गया। अतः अवैध परितोषण की मांग से संबंधित अपराध के मूल तत्व को विचारण के दौरान साबित नहीं किया जा सका।

35. तीसरा, प्रतिवादी की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने गवाहों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य का उल्लेख करते हुए यह बताया कि काला पर्स, जिसमें कथित रूप से रिश्वत की राशि थी, न्यायालय में प्रस्तुत नहीं किया गया। अभियोजन पक्ष का मामला यह था कि जब्त की गई मुद्रा को पुलिस मालखाने में एक कागज़ के पैकेट में रखा गया था। हालांकि, मुकदमे के दौरान अभियोजन पक्ष जब्त की गई राशि को प्रस्तुत करने में असमर्थ रहा, यह तर्क देते हुए कि जिस लिफाफे में धनराशि रखी गई थी, वह चूहे और अन्य कृंतकों द्वारा नष्ट कर दिया गया।

36. प्रतिवादी की ओर से यह भी तर्क दिया गया कि कोई स्वतंत्र गवाह यह पुष्टि नहीं कर सका कि प्रतिवादी द्वारा रिश्वत की मांग, स्वीकृति या प्रतिवादी के कब्जे से रिश्वत की राशि की जब्ती हुई थी।

37. प्रतिवादी की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि अभियोजन पक्ष आरोपी को अवैध परितोषण स्वीकार करते समय गिरफ्तार किए जाने का कोई स्वतंत्र गवाह प्रस्तुत करने में विफल रहा। हालांकि, अभियोजन पक्ष ने मुख्य रूप से अभियोजन साक्षी 3 की गवाही पर भरोसा किया, जो आर्थिक अपराध इकाई से जुड़े एक पुलिस अधिकारी थे और शिकायत में किए गए दावे को सत्यापित करने के लिए सूचक के साथ गए थे। अपनी गवाही में उन्होंने कहा कि उन्होंने आरोपी को पैसे मांगते हुए नहीं सुना। उन्होंने यह भी नहीं देखा कि आरोपी ने अवैध परितोषण स्वीकार किया। वह प्रतिवादी के कार्यालय के कमरे के दरवाजे के पास खड़े थे, और जैसे ही सूचक कमरे से बाहर आई, उन्होंने ट्रैप टीम को संकेत दिया, जिसके बाद आरोपी को पकड़ लिया गया।

38. प्रतिवादी की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अभियोजन साक्षी-1, अभियोजन साक्षी-2, अभियोजन साक्षी-6, अभियोजन साक्षी-8 और अभियोजन साक्षी-9 ट्रैप टीम के सदस्य थे, जिन्होंने आरोपी को पकड़ा। उनकी गवाही का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि इनमें से किसी ने भी प्रत्यक्ष रूप से आरोपी को रिश्वत मांगते या स्वीकार करते नहीं देखा। उन्होंने केवल यह देखा कि कुछ धनराशि एक काले पर्स से बरामद की गई, जिसे न्यायालय में प्रस्तुत नहीं किया गया।

39. प्रतिवादी की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता आगे कहते हैं कि अभियोजन साक्षी 10 द्वारा सिद्ध फॉरेंसिक रिपोर्ट (प्रदर्श 8) में आरोपी के हाथों और पर्स पर फीनोल्फ्थालेन पाउडर की उपस्थिति की पुष्टि की गई। हालांकि, FSL रिपोर्ट मे इस निष्कर्ष का समर्थन करने के लिए कोई वैज्ञानिक डेटा शामिल नहीं है।

40. प्रतिवादी की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने **पी. एस. राज्य बनाम बिहार राज्य (1996) 9 एस.सी.सी 1** के निर्णय पर भरोसा करते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया कि जब आपराधिक आरोप और प्रतिवादी के खिलाफ प्रारंभ की गई विभागीय कार्यवाही एक समान आरोप और एक ही समान साक्ष्यों के आधार पर थी, और विभागीय कार्यवाही प्रतिवादी के पक्ष में समाप्त हो गई, तो उन्ही साक्ष्यों के आधार पर आपराधिक आरोप बनाए नहीं रखे जा सकते।

41. इसी मुद्दे पर, प्रतिवादी की ओर से माननीय वरिष्ठ अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय अशू सुरेंद्रनाथ तिवारी बनाम सीबीआई एवं अन्य**,** (2020) 9 एस सी सी 636 के मामले का उल्लेख किया। उक्त निर्णय के अनुच्छेद संख्या 8 से 13 प्रासंगिक हैं और उन्हें नीचे उद्धृत किया गया है:-

> *"**8**. कई निर्णयों में कहा गया है कि विभागीय कार्यवाही में सबूत का मानक, संभाव्यता की प्रधानता पर आधारित होने के कारण आपराधिक कार्यवाही में सबूत के मानक से कुछ कम है जहां मामले को उचित संदेह से परे साबित किया जाना आवश्यक होता है। पी. एस. राज्य बनाम बिहार राज्य [(1996) 9 एस.सी.सी 1 : 1996 एस.सी.सी (क्रि) 897] में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत प्रश्न इस प्रकार था: (एस सी सी पृष्ठ 2-3, अनुच्छेद 3)"*
>
> *"3. इस अपील में विचार करने हेतु संक्षिप्त प्रश्न यह उठता है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5(2) सहपठित धारा 5(1)(e) के तहत अभियुक्त के खिलाफ अभियोजन जारी रखना न्यायसंगत है या नहीं, जबकि समान आरोपों के आधार पर केंद्रीय सतर्कता आयोग द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट और संघ लोक सेवा आयोग की सहमति के आधार पर विभागीय कार्यवाही में अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया गया था। "*

9. *इस न्यायालय ने आगे कहाः (पी. एस. राज्य मामला* ***[****पी. एस. राज्य बनाम बिहार राज्य*, *[(1996) 9 एस.सी.सी 1 :1996 एस.सी.सी (क्रि) 897], एस.सी.सी पृष्ठ 5, अनुच्छेद 17)*

"17. प्रारंभ में, हम यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता इस तथ्य से इंकार नहीं कर सके कि आपराधिक मामले में अपराध स्थापित करने के लिए आवश्यक प्रमाण का मानक विभागीय कार्यवाही की तुलना में कहीं अधिक कठोर होता है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि वर्तमान मामले में विभागीय कार्यवाही और आपराधिक कार्यवाही में आरोप एक ही हैं। उन्होंने विभागीय कार्यवाही में दिए गए निष्कर्षों और उसके अंतिम परिणाम पर कोई विवाद नहीं किया। "

10. *ऐसा मामला होने के कारण, न्यायालय ने तब निर्णय दियाः (पी. एस. राज्य मामला* ***[****पी. एस. राज्य बनाम बिहार राज्य*, *(1996) 9 एस.सी.सी 1:1996 एस.सी.सी (क्रि) 897], एस.सी.सी पी.9, पैरा 23)*

"23. यद्यपि केंद्रीय सतर्कता आयोग की रिपोर्ट सहित सभी तथ्यों को उच्च न्यायालय के संज्ञान में लाया गया था, दुर्भाग्यवश उच्च न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपनाया [प्रभु सरण राज्य बनाम बिहार राज्य, आपराधिक विविध संख्या 5212/1992 आदेश दिनांक 3-8-1993 (पी.AT)] कि उठाए गए मुद्दों पर अंतिम कार्यवाही में विचार किया जाएगा और विभागीय कार्यवाही में केंद्रीय सतर्कता आयोग द्वारा दिए गए दोषमुक्ति के निष्कर्ष आपराधिक मामले को समाप्त नहीं करेंगे। हालांकि, हम पहले ही यह निष्कर्ष निकाल चुके हैं कि इस विशेष मामले के विशिष्ट तथ्यों के आधार पर, अपीलकर्ता के खिलाफ शुरू की गई आपराधिक कार्यवाही को जारी नहीं रखा जा सकता। अतः, हम

उपरोक्त उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं। यही कारण हैं जिनके आधार पर हमने 27-3-1996 को अपील स्वीकार करने, प्रश्नगत आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने तथा आवश्यक आनुषंगिक राहत प्रदान करने का आदेश पारित किया।

11. राधेश्याम केजरीवाल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य [राधेश्याम केजरीवाल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (2011) 3 एस.सी.सी 581: (2011) 2 एस सी सी (क्रि) 721], में इस न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया: (एस.सी.सी पृष्ठ. 594-96, पैरा 26, 29 और 31)

"26. हम यह उल्लेख करना चाहेंगे कि आपराधिक मामले में प्रमाण का मानक अधिनिर्णयन कार्यवाही की तुलना में कहीं अधिक कठोर होता है। प्रवर्तन निदेशालय अधिनिर्णयन कार्यवाही में अपना मामला साबित करने में असफल रहा, और उस आरोप से अपीलकर्ता को दोषमुक्त कर दिया गया। अपीलकर्ता अब भी आपराधिक मुकदमे का सामना कर रहा है। इसलिए, हमारे विचार में, अधिनिर्णयन कार्यवाही में स्थापित तथ्य आपराधिक मामले में अप्रासंगिक नहीं माने जा सकते। बी एन कश्यप बनाम क्राउन, [1944 एएस.सी.सी ऑनलाइन लाह: : ए.आई.आर 1945 एल ए एच 23] के मामले में पूर्ण पीठ ने सिविल मामले में दिए गए तथ्यात्मक निष्कर्षों का आपराधिक मामलों पर प्रभाव पर विचार नहीं किया था। यह निम्नलिखित अंश से स्पष्ट होता है: (एस सी सी ऑनलाइन लाह: ए आई आर पृष्ठ 27)

'...... हालांकि, मुझे यह कहना होगा कि प्रश्न का उत्तर देते समय, मैंने केवल दीवानी मामलों का उल्लेख किया है जहां कार्रवाई व्यक्तिगत रूप से की जाती है, न कि उन मामलों का जहां प्रक्रिया या कार्यवाही समूहिक या

सामुदायिक मामलो से संबन्धित होती है। इस तरह की प्रक्रिया या कार्यवाही में तथ्य का निष्कर्ष आपराधिक मामलों में प्रासंगिक होगा या नहीं, वर्तमान मामले में निर्णय लेना मेरे लिए अनावश्यक है। जब वह प्रश्न निर्धारण के लिए उत्पन्न होता है, तो साक्ष्य अधिनियम की धारा 41 के प्रावधानों की सावधानीपूर्वक समीक्षा करनी होगी। '

*****

29. श्री मल्होत्रा के इस विस्तृत प्रस्तुतीकरण को स्वीकार करने में हमें जरा भी संकोच नहीं है अधिनिर्णयन कार्यवाही में दिया गया निष्कर्ष आपराधिक अभियोजन की कार्यवाही में बाध्यकारी नहीं होता। अधिनिर्णयन कार्यवाहियों में दंड का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी व्यक्ति को अनिवार्य रूप से आपराधिक मुकदमे में दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। अधिनिर्णयन कार्यवाही संभाव्यता के प्रधानता पर आधारित होती है, जबकि आपराधिक मामले में संदेह से परे आरोप सिद्ध करने का संपूर्ण दायित्व अभियोजन पक्ष पर होता है।

*****

31. यह सर्वविदित है कि आपराधिक कार्यवाही में साक्ष्य का मानक अधिनिर्णयन प्राधिकारी के समक्ष आवश्यक मानक से अधिक कठोर होता है। इस मामले में मुख्य प्रश्न यह है कि यदि किसी अभियुक्त को अधिनिर्णयन प्राधिकारी के समक्ष दोषमुक्त कर दिया गया हो, तो क्या उसी तथ्यों के आधार पर उसका आपराधिक अभियोजन जारी रखा जा सकता है या नहीं।

12. *विभिन्न न्यायिक निर्णयों का संदर्भ देने के बाद, इस न्यायालय ने उन निर्णयों का सार निम्नलिखित रूप में अनुच्छेद 38 में प्रस्तुत किया:*

(राधेश्याम केजरीवाल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, [(2011) 3 एस.सी.सी 581 : (2011) 2 एस.सी.सी (क्रि) 721], एस सी सी पृष्ठ 598)

"38. इन निर्णयों से जो अनुपात निकाला जा सकता है, उसे मोटे तौर पर निम्नानुसार कहा जा सकता हैः

(i) अधिनिर्णयन कार्यवाही और आपराधिक अभियोजन को एक साथ शुरू किया जा सकता है।

(ii) आपराधिक अभियोजन शुरू करने से पहले अधिनिर्णयन कार्यवाही में निर्णय लेना आवश्यक नहीं है।

(iii) अधिनिर्णयन कार्यवाहियाँ और आपराधिक कार्यवाहियाँ एक दूसरे के लिए स्वतंत्र प्रकृति की होती हैं।

(iv) अधिनिर्णयन कार्यवाही में अभियोजन का सामना करने वाले व्यक्ति के खिलाफ निष्कर्ष आपराधिक अभियोजन की कार्यवाही पर बाध्यकारी नहीं है।

(v) प्रवर्तन निदेशालय द्वारा अधिनिर्णयन की कार्यवाही संविधान के अनुच्छेद 20 (2) या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 300 के प्रावधानों को आकर्षित करने के लिए किसी सक्षम अदालत द्वारा अभियोजन नहीं है;

(vi) यदि अधिनिर्णयन कार्यवाही में दिए गए निष्कर्ष समान उल्लंघन के लिए मुकदमे का सामना करने वाले व्यक्ति के पक्ष में हैं, तो यह इस बात पर निर्भर करेगा कि वह निष्कर्ष किस प्रकृति का है। यदि निर्दोष घोषित करना केवल तकनीकी आधार पर हुआ है, न कि मामले के गुण-दोष के आधार पर, तो आपराधिक अभियोजन जारी रह सकता है।

(vii) हालांकि, यदि अधिनिर्णयन कार्यवाही में अभियुक्त को पूर्ण रूप से दोषमुक्त कर दिया गया है, जहां आरोपों को पूरी तरह अवैध माना गया हो और अभियुक्त को निर्दोष ठहराया गया हो, तो उसी तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर आपराधिक अभियोजन जारी नहीं रखा जा सकता। इसका मूलभूत सिद्धांत यह है कि आपराधिक मामलों में प्रमाण का मानक अधिक कठोर होता है।

13. *अंत में यह निष्कर्ष निकाला गयाः (राधेश्याम केजरीवाल मामला [राधेश्याम केजरीवाल बनाम स्टेट ऑफ डब्ल्यू. बी., (2011) 3 एस.सी.सी 581:(2011) 2 एस.सी.सी (क्रि) 721], एस.सी.सी पी. 598, पैरा 39)*

"39. इसलिए, हमारी राय में, यह निर्णय करने का पैमाना होगा कि क्या अधिनिर्णयन कार्यवाही के साथ-साथ अभियोजन की कार्यवाही में आरोप समान है और अधिनिर्णयन कार्यवाही में संबंधित व्यक्ति को दोषमुक्त करना गुण-दोष पर आधारित है। यदि गुण-दोष के आधार पर यह पाया जाता है कि अधिनिर्णयन की कार्यवाही में अधिनियम के प्रावधानों का कोई उल्लंघन नहीं हुआ है, तो संबंधित व्यक्ति का मुकदमा अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा। "

42. प्रतिवादी की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा **फूला सिंह बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य [(2014) 4 एस.सी.सी 9]** के निर्णय पर भरोसा करते हुए यह तर्क दिया गया है कि केवल असाधारण परिस्थितियों में, जहां अत्यंत अनिवार्य कारण मौजूद हों और अपीलाधीन निर्णय स्पष्ट रूप से विपरीत पाया जाए, तभी अपीलीय न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप किया जा सकता है। अपीलीय न्यायालय को यह ध्यान रखना चाहिए कि अभियुक्त की निर्दोषता की उपधरणा उसके पक्ष में कार्य करती है, और निचली अदालत द्वारा दी गई

दोषमुक्ति इस अनुमान को और अधिक सुदृढ़ करती है। सामान्य रूप से हस्तक्षेप से बचा जाना चाहिए, यदि वैकल्पिक दृष्टिकोण संभव हो, तो भी सिर्फ इस आधार पर अपीलीय न्यायालय को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, जब तक कि कोई ठोस कारण मौजूद न हो।

43. वर्तमान मामले में, प्रतिवादी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, हस्तक्षेप का कोई आधार नहीं है क्योंकि अभियोजन पक्ष प्रतिवादी के खिलाफ आरोप को साबित करने में निराशाजनक रूप से विफल रहा।

44. **राजा एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य [(2016) 10 एस.सी.सी 506]** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति के निर्णय में अपीलीय न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की सीमा पर विचार किया, **सुनिल कुमार संभुदयाल गुप्ता (डॉ.) एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2010) 13 एस.सी.सी 657]** में स्थापित सिद्धांत के अनुसार, यदि दो दृष्टिकोण संभव हों, तो अपीलीय न्यायालय सामान्य रूप से हस्तक्षेप नहीं कर सकता, भले ही उसकी राय अधिक संभावित लगे। अपीलीय न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह निचली अदालत के निर्णय में त्रुटि को पहचाने और यह तय करे कि क्या वह त्रुटि इतनी गंभीर है कि उसमें हस्तक्षेप किया जाए। सिर्फ अपनी राय को निचली अदालत की राय के स्थान पर प्रतिस्थापित करना अपेक्षित नहीं है। अपीलीय न्यायालय को अत्यंत सावधानीपूर्वक विवेकाधिकार का उपयोग करना चाहिए और केवल किसी गंभीर तथ्यात्मक या विधिक त्रुटि को सुधारने के लिए हस्तक्षेप करना चाहिए, यदि वह त्रुटि इतनी महत्वपूर्ण हो कि निचली अदालत के निर्णय को पलटना आवश्यक हो।

45. प्रतिवादी की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, वर्तमान मामले में अभियोजन पूर्णतः विफल रहा है यह साबित करने में कि अभियुक्त ने अवैध रिश्वत की मांग की थी।

46. प्रतिवादी की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता ने **पंजाब राज्य बनाम मदन मोहन लाल वर्मा [(2013) 14 एस.सी.सी 153]** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का उल्लेख

करते हुए तर्क दिया कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के तहत आरोप साबित करने के लिए अवैध परितोषण की मांग से संबंधित ठोस और संतोषजनक साक्ष्य प्रस्तुत करना अनिवार्य है। सिर्फ पैसे का रंगे हाथों बरामद कर लेने से अभियुक्त को दोषी ठहराना संभव नहीं है, जब तक कि मामले में प्रस्तुत ठोस साक्ष्य विश्वसनीय न हो। जब तक यह साबित करने के लिए साक्ष्य न हो कि रिश्वत की राशि का भुगतान किया गया था या वह राशि स्वेच्छा से रिश्वत के रूप में ली गई थी, तब तक सिर्फ अभियुक्त द्वारा राशि प्राप्त कर लेना दोष सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता। अवैध परितोषण की मांग और स्वीकार्यता से संबंधित स्पष्ट साक्ष्य के अभाव में मात्र धनराशि की प्राप्ति से अपराध सिद्ध नहीं किया जा सकता। अतः, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 20 के तहत उत्पन्न विधिक उपधरणा को खारिज करने का भार अभियुक्त पर होता है। इसके लिए अभियुक्त को प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य साक्ष्यों के माध्यम से यह साबित करना होगा कि उसने वह राशि किसी और उद्देश्य से स्वीकार की थी, न कि अधिनियम की धारा 7 के तहत प्रेरणा या पुरस्कार के रूप में। अदालत को धारा 20 का उपयोग करते समय अभियुक्त द्वारा दी गई व्याख्या को केवल संभाव्यता की प्रधानता के आधार पर परखना होता है, न कि संदेह से परे प्रमाण के आधार पर। हालांकि, अभियुक्त से यह स्पष्टीकरण मांगने से पहले कि वह धनराशि उसकी कब्जे में कैसे आई, अभियोजन को मूलभूत तथ्यों को स्थापित करना आवश्यक होता है।

47. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 लोक सेवक द्वारा रिश्वत लेने से संबंधित अपराधों से जुड़ी है। धारा 7 इस प्रकार है:

> *"7. लोक सेवक को रिश्वत दिये जाने से संबंधित अपराध" – कोई भी लोक सेवक जो –*
>
> *(क) या तो स्वयं या किसी अन्य लोक सेवक द्वारा अनुचित रूप से या बेईमानी से लोक कर्तव्य का पालन करने या करवाने, या ऐसे किसी कर्तव्य से*

प्रविरत रहने या प्रविरत करने के आशय से किसी व्यक्ति से अनुचित लाभ प्राप्त करता है या स्वीकार करता है या प्राप्त करने का प्रयास करता है, या

(ख) या तो स्वयं या किसी अन्य लोक सेवक द्वारा किसी लोक कर्तव्य के अनुचित रूप से या बेईमान से कर्तव्य का पालन करने के लिए, या ऐसे कर्तव्य के पालन से प्रविरत रहने करने के लिए पुरस्कार के रूप में किसी व्यक्ति से अनुचित लाभ प्राप्त करता है या स्वीकार करता है या प्राप्त करने का प्रयास करता है; या

(ग) किसी व्यक्ति से अनुचित लाभ स्वीकार करने की प्रत्याशा में या उसके परिणामस्वरूप किसी लोक कर्तव्य का अनुचित रूप से या बेईमान से पालन करेगा या ऐसे कर्तव्य का पालन करने के लिए प्रविरत रहेगा या अन्य किसी लोक सेवक को कर्तव्य के में किसी अन्य लोक सेवक को अनुचित या बेईमानी से सार्वजनिक कर्तव्य का पालन करने के लिए प्रेरित करेगा, वह कारावास से दंडनीय होगा जो तीन साल से कम नहीं होगा, लेकिन जो सात साल तक बढ़ सकता है और जुर्माने के लिए भी उत्तरदायी होगा। "

48. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **कृष्ण चंदर बनाम दिल्ली राज्य [2016 (3) एस.सी.सी 108]** में यह निर्णय दिया है कि अवैध लाभ (रिश्वत) की मांग भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत अपराध स्थापित करने के लिए एक आवश्यक शर्त है। केवल अभियुक्त से बरामद की गई रंग लगी राशि की प्रस्तुति, साथ ही फिनॉल्फ्थलीन परीक्षण के सकारात्मक परिणाम, यदि रिश्वत की मांग साबित नहीं होती, तो यह अधिनियम की धारा 7 के तहत अभियुक्त के विरुद्ध अपराध सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है।

49. इस मामले में, लिखित शिकायत और अभियोजन साक्षी 5 (शिकायतकर्ता) के साक्ष्य से यह पाया गया कि 7 जुलाई 2014 को जब शिकायतकर्ता ब्लॉक हेल्थ सेंटर में टीकाकरण से संबंधित प्रशिक्षण कार्यक्रम में शामिल होने गई, तब अभियुक्त, जो कि सी डी

पी ओ थीं, ने पाया कि शिकायतकर्ता आंगनवाड़ी केंद्र का संचालन ठीक से नहीं कर पा रही हैं और उन्होंने केंद्र को बंद करने की बात कही। जब शिकायतकर्ता ने दया की प्रार्थना की, तो सी डी पी ओ ने उसे अपने ड्राइवर से बात करने के लिए कहा। इसके बाद, सी डी पी ओ के ड्राइवर ने ₹10,000/- की मांग की। इस प्रकार, अभियुक्त द्वारा रिश्वत की कोई प्रत्यक्ष मांग नहीं की गई थी।

50. इस मोड़ पर, एक महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 के तहत रिश्वत की मांग अभियुक्त (स्वयं) द्वारा की जानी चाहिए, या अभियुक्त किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से भी धन की मांग कर सकता है? इस मामले में, अपीलकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया कि अभियुक्त के ड्राइवर द्वारा की गई कथित मांग को अभियुक्त द्वारा स्वयं की गई मांग के रूप में माना जाना चाहिए।

51. इस संबंध में, अपीलकर्ता ने अभियोजन साक्षी 3 के साक्ष्य पर विशेष रूप से भरोसा किया, जो 17 जुलाई 2014 को आर्थिक अपराध इकाई में इंस्पेक्टर के रूप में तैनात थे। उनके साक्ष्य से यह पता चलता है कि 16 जुलाई 2014 को, पुलिस अधीक्षक, आर्थिक अपराध इकाई के निर्देश पर, वह शिकायतकर्ता के साथ सी डी पी ओ के कार्यालय गए और दोपहर 1:30 बजे वहां पहुंचे। उन्होंने देखा कि सी डी पी ओ अपने कार्यालय में उपस्थित नहीं थीं। इसके बाद, वे सी डी पी ओ के निवास स्थान पर गए। वे अभियुक्त से उनके घर पर मिले। शिकायतकर्ता ने अनुरोध किया कि निरीक्षण पुस्तिका में उनके आंगनवाड़ी केंद्र के खिलाफ कोई प्रतिकूल टिप्पणी न की जाए। इसी समय, अभियुक्त ने ₹10,000/- की रिश्वत की मांग की। शिकायतकर्ता ने ₹2,000/- देने की पेशकश की, लेकिन अभियुक्त ने इसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया। इसके बाद, शिकायतकर्ता ने अभियुक्त की मांग पूरी करने के लिए सहमति जताई और कहा कि वह 18 जुलाई 2014 को दोपहर 1:00 बजे राशि लेकर आएगी। इसके बाद की घटनाओं में प्री-ट्रैप मेमो, रिश्वत की राशि के साथ जाल

बिछाना, अभियुक्त की गिरफ्तारी आदि शामिल हैं, जो गवाहों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों का हिस्सा हैं।

52. इस स्तर पर, स्वाभाविक रूप से एक सवाल उठता है कि क्या रुपये की प्रारंभिक मांग है। 10, 000/- अभियुक्त के चालक द्वारा अभियुक्त द्वारा अवैध परितोषण की मांग के अभियोजन मामले को झुठलाया जाता है। इस संबंध में, इस न्यायालय ने पाया कि अभियोजन साक्षी 3 की बचाव पक्ष के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विस्तार से प्रतिपरीक्षा की गई थी। वह एक पुलिस अधिकारी है जिसे मामले के परिणाम में कोई दिलचस्पी नहीं है। यह भी सुझाव नहीं दिया जाता है कि अभियोजन साक्षी 3 अभियुक्त के खिलाफ शत्रुतापूर्ण भाव रखता था। अभियोजन साक्षी 3 के लिए कोई कारण नहीं है कि वह गलत सबूत पेश करेगा। उसके साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि आरोपी ने रुपये की राशि की मांग की थी। सूचना देने वाले से 10,000/- इस प्रकार, लोक कर्तव्य के बेईमान निष्पादन के लिए रिश्वत मांगी थी, के लिए अभियुक्त द्वारा अवैध संतुष्टि की मांग, यानी आंगनवाड़ी केंद्र की निरीक्षण पुस्तिका में गलत रिपोर्ट देना, अभियोजन साक्षी 3 और अभियोजन साक्षी 5 के साक्ष्य के आधार पर संदेह की छाया से परे साबित होता है।

53. अभियोजन साक्षी 5 ने आर्थिक अपराध इकाई के समक्ष शिकायत केवल तब दर्ज कराई, जब उससे अवैध रूप से ₹10,000/- की रिश्वत मांगी गई। यह सच है कि अभियोजन पक्ष अभियुक्त के कब्जे से जब्त किए गए मुद्रा नोट को अदालत में प्रस्तुत करने में असफल रहा, क्योंकि जब्त की गई राशि वाला लिफाफा चूहों और अन्य कीटों द्वारा नष्ट कर दिया गया था। हालांकि, मुकदमे के दौरान पुलिस थाने के मालखाने का रजिस्टर प्रस्तुत किया गया और उसे साक्ष्य के रूप में प्रदर्शित किया गया। मालखाने के रजिस्टर में इस मामले से संबंधित जब्त किए गए रिश्वत के पैसे वाले लिफाफे की प्राप्ति विधिवत दर्ज थी। इस प्रकार, इसमें कोई संदेह नहीं है कि जब्त की गई राशि मालखाने के रजिस्टर में दर्ज थी, लेकिन खराब रखरखाव और अद्यतन संरक्षण प्रणाली के अभाव में, लिफाफा और उसमें रखे नोट चूहों द्वारा

नष्ट कर दिए गए। अतः जब्त की गई राशि के नष्ट हो जाने के कारण अभियोजन के मामले को अविश्वसनीय नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह राशि अभियुक्त के कब्जे से बरामद की गई थी। कई मामलों में, विभिन्न कारणों से जब्त किए गए सामान मुकदमे के दौरान प्रस्तुत नहीं किए जा सकते। कई बार अपराध से संबंधित वस्तु भी जांच एजेंसी द्वारा बरामद नहीं की जा सकती। अनेक मामलों में अपराध की मुख्य वस्तु *स्वयं* अपराधियों द्वारा नष्ट कर दी जाती है। ऐसे हालात में भी, यदि अन्य परिस्थितिजन्य साक्ष्य अभियुक्त के अपराध की ओर स्पष्ट रूप से संकेत करते हैं और कोई युक्तिसंगत संदेह नहीं बचता, तो अभियुक्त को दोषी ठहराया जा सकता है।

54. इस मामले में, अभियुक्त को तुरंत उस समय गिरफ्तार कर लिया गया जब उसने अवैध रिश्वत की राशि प्राप्त की। रिश्वत की रकम अभियुक्त के पर्स से बरामद की गई। ट्रैप के बाद तैयार किया गया ज्ञापन अदालत में साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया और उसे प्रदर्श के रूप में स्वीकार किया गया। पोस्ट ट्रैप मेमो से यह स्पष्ट होता है कि जब अभियुक्त के हाथों को धुलाया गया, तो पानी गुलाबी रंग में बदल गया। यह फेनोल्फथेलिन पाउडर के कारण हुआ, जो पहले से ही रिश्वत की रकम पर लगाया गया था। अभियुक्त ने रिश्वत की राशि प्राप्त करने के बाद उसे अपने पर्स में रख लिया था। इसके बाद, पर्स को भी धोया गया, जिससे पानी गुलाबी हो गया। जब्त किए गए इस पानी को फॉरेंसिक जांच के लिए भेजा गया और रिपोर्ट में सोडियम कार्बोनेट और फेनोल्फथेलिन पाउडर की उपस्थिति की पुष्टि हुई।

55. प्रतिवादी (अभियुक्त) की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता ने जोर देकर तर्क दिया कि अभियोजन पक्ष यह साबित करने में असफल रहा कि अभियुक्त को ₹10,000/- की रिश्वत दी गई थी। शिकायतकर्ता ने स्वयं कहा था कि उसने ₹1,000/- मूल्य के सात नोट (कुल ₹7,000/-) अभियुक्त को दिए थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि आर्थिक अपराध इकाई के पास केवल ₹7,000/- थे। अतः अभियोजन पक्ष द्वारा अभियुक्त के ₹10,000/- की मांग करने की जो कहानी प्रस्तुत की गई है, वह पूरी तरह अविश्वसनीय हो जाती है।

56. इस मामले में, अभियोजन पक्ष का यह दायित्व है कि वह यह सिद्ध करे कि अभियुक्त ने अवैध रिश्वत की मांग की और उसे स्वीकार किया। यह निरर्थक है कि दी गई राशि ₹7,000/- थी या ₹10,000/-। अदालती रिकॉर्ड में उपलब्ध साक्ष्य स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि अभियुक्त ने अवैध परितोषण की मांग की और उसे प्राप्त भी किया।

57. धारा 13(1)(घ) सार्वजनिक सेवक द्वारा आपराधिक कदाचार से संबंधित है। यदि कोई लोक सेवक: (i) भ्रष्ट या अवैध तरीकों से स्वयं के लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान वस्तु या आर्थिक लाभ प्राप्त करता है, या (ii) अपने पद के कार्यकाल के दौरान जानबूझकर अवैध रूप से अपनी संपत्ति बढ़ाता है, तो उसे आपराधिक कदाचार का दोषी माना जाएगा।

58. धारा 13(1)(घ) के तहत आरोप सिद्ध करने के लिए, यह आवश्यक नहीं है कि अभियोजन पक्ष यह साबित करे कि अभियुक्त ने अवैध परितोषण की मांग की थी।

59. इस संदर्भ में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय **सी. के. दामोदरन नायर बनाम भारत सरकार, रिपोर्ट, [(1997) 9 एस सी सी 477]** उल्लेखनीय है।

60. अभिलेख में उपलब्ध साक्ष्यों के सावधानीपूर्वक अवलोकन के बाद, यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अभियोजन पक्ष भुगतान किए गए रिश्वत को साबित करने के लिए संतोषजनक साक्ष्य प्रस्तुत करने में सफल रहा। साक्ष्य यह स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि अभियुक्त ने यह जानते हुए कि यह रिश्वत है, स्वेच्छा से धनराशि स्वीकार की। अतः, निचली अदालत द्वारा अभियुक्त को दोषमुक्त करने का आदेश देने में त्रुटि की गई है।

61. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, अभिलेख में उपलब्ध साक्ष्यों के सावधानीपूर्वक विचारण तथा दोनों पक्षों के वरिष्ठ अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अपीलकर्ता अभियुक्त के विरुद्ध आरोपों को अधिनियम की धारा 7 तथा धारा 13(1)(घ) के तहत अपराध सिद्ध करने में सफल रहा है।

62. इस संदर्भ में, यह न्यायालय स्पष्ट रूप से रिकॉर्ड करता है कि केवल इस आधार पर अभियुक्त को संदेह का लाभ देना अप्रासंगिक है कि उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही खारिज कर दी गई थी।

63. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 के तहत दंडनीय अपराध के लिए, प्रतिवादी को न्यूनतम तीन वर्ष की कारावास की सजा दी जाएगी, जो अधिकतम सात वर्ष तक बढ़ाई जा सकती है। साथ ही, अभियुक्त पर आर्थिक दंड लगाने का भी प्रावधान है।

64. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(घ) के तहत दंडनीय अपराध के लिए, प्रतिवादी को न्यूनतम चार वर्ष की कारावास की सजा दी जाएगी, जो अधिकतम 10 वर्ष तक बढ़ाई जा सकती है। साथ ही, अभियुक्त पर आर्थिक दंड लगाने का भी प्रावधान है।

65. अतः, प्रतिवादी को तदनुसार दोषी ठहराया जाता है।

(बिबेक चौधरी, न्यायमूर्ति)

एसकेएम/-

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।